



CHETANA

International Journal of Education

Impact Factor  
SJIF 2021 - 6.169

Peer Reviewed/  
Refereed Journal

ISSN-Print-2231-3613  
Online-2455-8729



Prof. A.P. Sharma  
Founder Editor, CIJE  
(25.12.1932 - 09.01.2019)

Received on 28<sup>th</sup> Jan. 2022, Revised on 27<sup>th</sup> Feb. 2022, Accepted 29<sup>th</sup> Mar. 2022

शोध-आलेख

प्राचीन भारत में व्यापार

\* सुनीता, शोधार्थी

डॉ. सीमा वर्मा, शोध निर्देशिका एवं एसोसिएट प्रोफेसर  
इतिहास विभाग, टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर  
E-mail- pstodr@gmail.com, Mob.-9549600633

मुख्य शब्द- पुरुषार्थ, अर्थ, सिन्धु संस्कृति आदि।

#### प्रस्तावना

किसी भी सभ्यता का मेरुदण्ड उसका आर्थिक ढांचा होता है। इस दृष्टि से भारत प्राचीन काल में अत्यधिक सम्पन्न था। वास्तव में भारतीय समाज का आर्थिक विकास 'पुरुषार्थ' के जीवन दर्शन के माध्यम से हुआ है जिसमें अर्थ भी एक प्रधान तत्त्व माना गया है। प्रायः व्यक्ति की मनःकांक्षा अनेकानेक वस्तुएँ प्राप्त करने की होती है, जो अर्थ के सहयोग से ही पूर्णता को प्राप्त करती है। इसीलिए हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने पुरुषार्थ के अन्तर्गत अर्थ की नियोजना की। अतः अर्थ मनुष्य को भौतिक और लौकिक सुख प्रदान करने वाला विशिष्ट तत्त्व माना गया है। महाभारत में इसे उच्चतम धर्म मानकर इसकी प्रतिष्ठा और महत्ता स्वीकार की गई है। कौटिल्य और बृहस्पति जैसे अनेक भारतीय शास्त्रकारों ने भी मनुष्य के जीवन में अर्थ की आवश्यकता और महत्ता प्रतिपादित की है तथा इसे संसार का मूल माना है।

प्राचीन भारत में अर्थ अथवा धन के उपार्जन से सम्बन्धित विषय के लिए 'वार्ता' शब्द का व्यवहार किया जाता था। अतः वार्ता शब्द मनुष्य के आर्थिक जीवन के कार्यकलापों से सम्बन्धित था। कौटिल्य ने वार्ता की महत्ता को स्वीकार करते हुए लिखा है कि कृषि, पशुपालन और वाणिज्य वार्ता के विषय थे। महाभारत के अनुसार वार्ता से संसार का पोषण होता है, इसलिए वह लोक का मूल है। मनु ने भी वार्ता के महत्त्व को स्वीकार किया है तथा व्यावहारिक और लोक ज्ञान के लिए उसे अनिवार्य माना है। रामायण में तो उसे लोक में सुख प्राप्ति का साधन माना गया है। लेकिन यह भी सत्य है कि प्राचीन भारत में आर्थिक पक्ष का अत्यधिक महत्त्व होते हुए भी इस विषय पर इतने अधिक ग्रन्थ नहीं लिखे गए, जितने कि धार्मिक पक्ष पर। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारत एक धर्म प्रधान देश रहा है जिसमें धर्म को अर्थ की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया गया। इस कारण इस विषय से सम्बन्धित कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। लेकिन फिर भी हमारे पास इतने साधन हैं कि सबको मिलाकर प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास का सही रूप सामने रखा जा सकता है।

भारतीय व्यापार की जानकारी हमें सर्वप्रथम सिन्धु संस्कृति के माध्यम से होती है। यहाँ से प्राप्त भग्नावशेषों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईसा से लगभग 2500 वर्ष पूर्व व्यापार उन्नत दशा में था और यहाँ के लोग जहाजरानी के प्रयोग से भलीभांति परिचित थे। यद्यपि सिन्धु संस्कृति के किसी भी स्थल से नाव के अवशेष नहीं मिले हैं लेकिन विभिन्न वस्तुओं पर बने जहाजों के चित्र इस बात

के स्पष्ट प्रमाण हैं कि ये लोग जहाजरानी के क्षेत्र में भी काफी आगे बढ़े हुए थे। इसी प्रकार लोथल से प्राप्त गोदीबाड़ा ने भी इस दिशा में हमारा सफल मार्गदर्शन किया है जो एक नहर द्वारा काम्बे की खाड़ी से जुड़ा हुआ था। मोहनजोदड़ों तथा हड़प्पा से प्राप्त वस्तुओं से पता चलता है कि यह व्यापार स्थानिक न होकर दूर तक फैला हुआ था। इसका प्रमाण यहाँ के उत्खनन से कुछ ऐसी वस्तुओं का मिलना है जो स्थानीय कृति नहीं हैं, जिन्हें स्पष्ट रूप से बाहर से मंगाया गया था। लेकिन इनके बदले में यहाँ के लोग किन वस्तुओं का निर्यात करते थे, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसके लिए हमें पूर्ण रूप से पुरातात्विक सामग्री पर ही निर्भर रहना पड़ता है और पुरातत्व से भी हमें नष्ट न होने वाली वस्तुओं का पता चलता है फिर भी हमें अनेक ऐसी वस्तुएं मिली हैं, जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ से विदेशों को भेजी जाने वाली वस्तुओं में हाथीदांत का सामान, कपास एवं उससे बनी वस्तुएं सीप, सेलखड़ी की मुद्राएं, अनेक प्रकार की मिट्टी के पात्र, लकड़ी का सामान, मनके तथा चार्ट के धनात्मक बाट मुख्य थे।

सिन्धु सभ्यता के पतन के पश्चात् पंजाब तथा सिन्धु के क्षेत्र में एक नई सभ्यता विकसित हुई, जिसे वैदिक सभ्यता के नाम से जाना जाता है। इसकी जानकारी के लिए हमें पूर्ण रूप से वैदिक साहित्य पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यद्यपि इनके माध्यम से हमें इस समय के व्यापार की विशेष जानकारी तो नहीं मिलती, किन्तु इतना अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि इस काल में आर्यों ने जंगली रास्तों और पगडंडियों को छोड़कर, जो देश के एक भाग को दूसरे भाग से मिलाते थे, महापथों की कल्पना की। ऋग्वेद में हम 'प्रपथ' अर्थात् बड़े मार्गों और अथर्ववेद में 'परिस्थ्या' अर्थात् ऐसे मार्ग जिन पर रथ चल सके का वर्णन पाते हैं। परवर्ती वैदिक साहित्य से भी हमें पता चलता है कि बड़े ग्राम महापथों से जुड़े हुए थे और ये लोग समुद्री मार्गों से भी भलीभांति परिचित थे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस काल में भारत का आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार धीरे-धीरे प्रगति की ओर बढ़ रहा था।

बौद्ध काल में आकर व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति हुई। लोहे के उपकरणों का व्यापक पैमाने पर उत्पादन शुरू हो जाने से कृषि के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई, जिससे ज्यादा से ज्यादा उत्पादन हुआ और शहरीकरण का दूसरा दौर शुरू हुआ। इस काल में देश में मार्गों का जाल सा बिछ गया और देश के सभी प्रमुख व्यापारिक नगर मार्गों से जुड़ गए। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग उत्तरापथ था जो पुरुषपुर (पेशावर) से प्रारम्भ होकर पाटलिपुत्र तक जाता था। यूनानी यात्रियों ने भी उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त से पाटलिपुत्र तक जाने वाले इस मार्ग का वर्णन किया है। इस पर रास्ते में बाहलीक, कपिशा, पुष्कलावती, मशकावती, उद्भाण्डपुर, तक्षशिला, शाकल, हस्तिनापुर, मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, काशी और पाटलिपुत्र पड़ते थे। पाटलिपुत्र से आगे यह मार्ग ताम्रलिप्ति तक चला जाता था। वास्तव में यह उस समय की ग्रांड ट्रंक रोड थी। बौद्ध ग्रंथों से समुद्रयात्रा के बारे में अनेक महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती हैं कि व्यापारी किस प्रकार अनेक कष्टों का सामना करते हुए विदेशों में व्यापार के लिए जाया करते थे। जातकों के माध्यम से पता चलता है कि इस काल में भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर भरुकच्छ, सुपरिक और सौवीर तथा पूर्वी तट पर ताम्रलिप्ति और कोवरीपट्टन मुख्य बन्दरगाह थे। जातकों से इस बात का तो ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि देश में किन-किन वस्तुओं का आयात और निर्यात किया जाता था परन्तु फिर भी यह कहा जा सकता है कि व्यापार में कपड़ों का मुख्य स्थान था। इसके अतिरिक्त मसाले, समुद्र तथा पर्वतों से प्राप्त अलम्य वस्तुएं, चन्दन की लकड़ी और हाथीदांत का सामान आदि का भी निर्यात किया जाता था।

मौर्यकालीन व्यापार और वाणिज्य के बारे में विस्तृत जानकारी हमें कौटिल्य अर्थशास्त्र और मेगस्थनीज की इण्डिका से होती है। कौटिल्य के अनुसार इस काल में व्यापार पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण था। व्यापार की देखभाल के लिए राज्य की ओर से एक अधिकारी नियुक्त किया जाता था, जिसे 'पण्याध्यक्ष' कहते थे। वह वाणिज्य सम्बन्धी नीतियों और व्यवस्थाओं का पूर्ण ज्ञाता होता था। व्यापार की व्यवस्था के सम्बन्ध में उसके अधिकार विस्तृत और व्यापक होते थे। वह जल और स्थलपथ से आने वाली सभी वस्तुओं में तारतम्य रखता था और वस्तुओं की माँ के आधार पर निश्चित मात्रा में उनका संग्रह करवाता था। वह सदैव इस बात का ध्यान रखता था कि क्रय-विक्रय जनता के लाभ हो दृष्टि में रखकर किया जाए और साथ ही व्यापारियों को भी किसी प्रकार की हानि न हो। प्रायः सभी वस्तुएं उत्पादन स्थल पर ही बेची जाती थी। व्यापारी राज्य द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही माल बेचते थे।

जो व्यापारी निर्धारित मूल्य से अधिक लेने का प्रयास करते थे, उनका माल राज्य द्वारा जब्त कर लिया जाता था। पण्य सम्बन्धी चुंगी एवं तौल-माप के निरीक्षण के लिए क्रमशः शुल्काध्यक्ष और पौतवाध्यक्ष संज्ञक अधिकारी नियुक्त किए जाते थे।

इस काल में विदेशी व्यापार के प्रोत्साहन की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया। अर्थशास्त्र में विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए व्यापारियों पर चुंगी भी कम करने की बात कही गयी है। विदेशी बाजारों में भारत का माल पहुँचाने के लिए सभी प्रयास किये जाते थे। पण्यध्यक्ष सभी तथ्यों पर विचार करने के बाद यह निश्चित करता था कि विदेशों में माल निर्यात किया जाये अथवा नहीं तथा वस्तुओं का निर्यात करने पर विभिन्न कर एवं व्यय के पश्चात् कितना लाभ होगा। निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के बदले में किन वस्तुओं का आयात किया जायेगा, इसका निर्धारण भी पण्यध्यक्ष करता था। वह सदैव इस बात का ध्यान रखता था कि किसी भी स्थिति में घाटा न हो। भारतीय माल का निर्यात करने वाले व्यापारियों को आवश्यक सुविधाएँ दी जाती थीं। आयात के क्षेत्र में भी यह उल्लेखनीय है कि उन वस्तुओं का आयात पूरी तरह से निषिद्ध था जिनसे राष्ट्र को हानि पहुँचती थी, किन्तु राष्ट्र के उपयोग में आने वाले अप्राप्य बीजों तथा वस्तुओं के आयात की पूर्ण आज्ञा थी। मेगस्थनीज ने देश में रहने वाले विदेशी व्यापारियों का उल्लेख किया है। पाटलिपुत्र नगर निगम की एक समिति विदेशियों की सुरक्षा का प्रबन्ध करती थी। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि इस काल में मसालों, समुद्र तथा पर्वतों से प्राप्त अलभ्य वस्तुओं, हाथीदाँत का सामान, कछुओं की पीठ, टीक तथा चन्दन की लकड़ी, शराब, अगरू, जटामांसी तथा सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों का व्यापार मुख्य रूप से होता था। इस काल में भारत के यूनान, मिश्र, मध्य एशिया, चीन तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध थे।

मौयोत्तर काल यद्यपि राजनीतिक अस्थिरता का काल था लेकिन इसके बावजूद इस काल में व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति हुई। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता भारत और पश्चिमी देशों के बीच व्यापार में तीव्र प्रगति थी। मौर्यों के समय में आन्तरिक आवागमन की जो सुविधा विकसित हुई थी, उससे इस काल में व्यापार को सुदृढ़ रूप प्राप्त हुआ। मार्गों के बन जाने से देश के किसी भी भाग में आना-जाना सम्भव हो गया जिससे आन्तरिक व्यापार को बहुत प्रोत्साहन मिला। पहली सदी ई. में मानसून हवाओं की सहायता से अल्प समय में ही हिन्द महासागर को पार करने के हिप्पालस के आविष्कार से तथा रोमन जगत में भारतीय वस्तुओं की माँग बढ़ जाने से इस समय न केवल पश्चिमी जगत के साथ भारत के व्यापार में अभूतपूर्व उन्नति हुई, अपितु रोमन साम्राज्य की माँग पूरी करने के लिए भारतीय व्यापारियों ने दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा चीन के साथ भी अपने व्यापार को बहुत बढ़ावा दिया। इस समय भारत चीन के रेशम व्यापार में बिचौलिए का काम करता था। वह चीन से रेशम खरीदकर उसका रोम को निर्यात करता था जिससे इस पारगमन व्यापार में भारतीय व्यापारियों को बहुत लाभ पहुँचा। ये लोग दक्षिण-पूर्वी एशिया में मसालें खरीदकर भी उसका रोम को निर्यात करते थे। इसके अतिरिक्त इस समय की व्यापारिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भारत में भी कृषि एवं विभिन्न उद्योग-धन्धों के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप दूसरे देशों के सोने का प्रवाह भारत की ओर बहने लगा और भारत में अभूतपूर्व समृद्धि का श्रीगणेश हुआ। इस समय भारत को व्यापार में वैसी ही समृद्धि प्राप्त हुई, जैसी समृद्धि यूरोपियन देशों को 16वीं शताब्दी में पूर्वी देशों के साथ व्यापार में हुई थी। इस समय की समृद्धि का वर्णन हमें तत्कालीन संस्कृत, पालि एवं तमिल ग्रन्थों से मिलता है। सातवाहन मुद्राओं पर नौ-पोतों के चित्र भी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि तत्कालीन समय में समुद्री व्यापार अपने उत्कर्ष था। इस काल में भारत के समुद्री तटों पर विदेशियों की अनेक बस्तियाँ भी स्थापित की गयी थी, जिसमें बड़ी संख्या में विदेशी व्यापारी निवास करते थे। मिश्र, रोम तथा यूनान आदि देशों को विभिन्न प्रकार के सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र, मलमल, मसाले, कालीमिर्च, अगरू, जटामांसी, मजीष्ठ, शंख, सुपारी, चन्दन, सुगन्धित पदार्थ, मोती, पशु-पक्षी तथा प्रसाधन सामग्री आदि का निर्यात किया जाता था। यूनानी लेखक प्लिनी के अनुसार भारतीय व्यापारी प्रतिवर्ष रोम से कम से कम साढ़े पाँच करोड़ सेंस्टर प्राप्त करते थे। वास्तव में इस काल में भारत का विदेशी व्यापार अपनी उन्नति के चरम उत्कर्ष पर पहुँचा गया था।

### निष्कर्ष

गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग माना जाता है। तत्कालीन साहित्य में इस काल के व्यापार के अनेक उल्लेख मिलते हैं। 'चतुर्भाषी' में पाटलिपुत्र और उज्जैन के बाजारों के उल्लेख से पता चलता है कि इस काल में व्यापार अत्यन्त उन्नत दशा में था।

यद्यपि इस काल में भारत का रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार काफी कम हो गया था, लेकिन फारस, चीन, दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा अन्य देशों के साथ यह निरन्तर चलता रहा। प्राकृत ग्रन्थ 'वासुदेव हिंडी' से इस काल के व्यापार और मार्गों पर बहुत अच्छा प्रकाश पड़ता है। इसी ग्रन्थ से पता चलता है कि इस समय के व्यापार में दुकूल, चीनाशुक, कौशेय, कुंकुम, माणिक्य, सुगन्धित चूर्ण, कम्बल, पश्मीना, मणि, हंस, प्रवाल, हाथीदांत का सामान, सोने-चाँदी के गहनों और सुगन्धित द्रव्यों का विशेष महत्व था। नारद स्मृति से ज्ञात होता है कि इस काल में व्यापार काफी बढ़ा हुआ था और व्यापारी संगठित रूप से काम करते थे। उज्जैन, मथुरा, पाटलिपुत्र, तक्षशिला, दशपुर, पैठन, महिष्मति, ताम्रलिप्ति, भडौच, सुर्पारक तथा कावेरीपट्टम् इस समय के महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र तथा बन्दरगाह थे।

#### संदर्भ ग्रंथ

- 1 सतीश चंद्र काला, सिंधु सभ्यता, पृ. 96-97
- 2 जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1898, पृ. 260

#### Journals & Publications

- 1 Ancient India
- 2 Journal of U.P. Historical Society, Lucknow
- 3 Progress Report of the Archaeological Survey of India, Western Circle

#### \* Corresponding Author

सुनीता, शोधार्थी

डॉ. सीमा वर्मा, शोध निर्देशिका एवं एसोसिएट प्रोफेसर  
इतिहास विभाग, टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर

E-mail- pstodr@gmail.com, Mob.-9549600633